THE ECONOMIC TIMES

Date: 10-01-17

Diaspora: Beyond blood and treasure

The Pravasi Bharatiya Divas must not be dismissed as a three-day jamboree or a side show for Indians living abroad and people of Indian origin. Instead, it is an opportunity for engagement.The present government's approach in this regard is most welcome. Nearly 16 million people born in India now live elsewhere, according the United Nations' International Migration Report.

The World Bank estimated that remittance flow to India in 2015 was to the tune of $72 billion. The 'pravasi' Indian is an important resource, and occasions like the Pravasi Bharatiya Divas should yield partnerships to aid the social and economic transformation of the country.Across the world today, Indians — NRIs and persons of Indian origin — are in leadership positions in businesses, academia and policymaking. The overseas Indian should be seen as more than a potential investor.Given their location in the mainstream of their adopted countries or their sheer numbers, the overseas Indian can play an important role in presenting a more realistic assessment of India.Governments and institutions need to make provisions that will allow for such partnerships to be more than good intentions. As the government crafts its engagement with overseas Indians, it needs to augment its outreach services for expats, especially as the Gulf countries such as UAE, Saudi Arabia, Kuwait, Oman and several African states have emerged as important destinations for emigrating Indians, besides the US, UK and Canada.

Given India's ambitions as a global power, the diaspora provides an important entry point for India to work with countries across the world big and small. The government's outreach to the expat Indian community needs to be more than pomp and show.Neither should the size and volume of investments become the only measure of success of this partnership.Instead, the expat should be a resource that can be drawn on. That requires work from all stakeholders. It also requires a vital and transparent adjustment of expectations that stakeholders have of each other.

दैनिक भास्कर

Date: 10-01-17

सही साबित हो रही है नोटबंदी पर राष्ट्रपति की चेतावनी

नोटबंदी पर राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी की चेतावनी सही साबित हो रही है। भारत सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय की ताजा रिपोर्ट के अनुसार महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के तहत रोजाना रोजगार की मांग में 60 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। ऐसा शहरों में औद्योगिक इकाइयों के बंद होने या उनमें काम घटने के कारण मजदूरों के उल्टे पलायन के चलते हुआ है। इसकी पुष्टि करते हुए ऑल इंडिया

मैनुफैक्चरर्स आर्गनाइजेशन का अध्ययन कहता है कि नोटबंदी के बाद 50 प्रतिशत राजस्व की हानि हुई है और 35 प्रतिशत नौकरियां कम हुई हैं।

मार्च 2017 तक यह आंकड़ा क्रमशः

55 प्रतिशत और 60 प्रतिशत तक जाने वाला है। यह स्थिति प्रधानमंत्री के उस दावे के विपरीत है कि उनके नोटबंदी के फैसले से अमीर लोगों की नींद हराम हो गई है और आम आदमी खुश है। हालात वित्त मंत्री के उस दावे से भी अलग है कि तकलीफों के दिन खत्म हो गए हैं और बुरे प्रभाव थोड़े दिनों के लिए हैं। सरकारी और गैर-सरकारी दोनों क्षेत्रों की संस्थाओं के अध्ययन बता रहे हैं कि मार्च 2017 तक मजदूर वर्ग की स्थिति नहीं सुधरने वाली है और औद्योगिक जगत में सामान्य स्थिति आसानी से लौटने वाली नहीं है। मनरेगा के तहत रोजाना रोजगार मांगने वालों की तादाद जुलाई से नवंबर 2016 तक 30 लाख थी जो 7 जनवरी 2017 तक 83.60 लाख रोजाना हो गई है। संगठित और कुशल रोजगार से अकुशल और असंगठित रोजगार की ओर पलायन की इस तादाद में तीन गुना की वृद्धि ने मनरेगा के 47,000 करोड़ के बजट का 85 प्रतिशत खत्म कर दिया है और ग्रामीण विकास मंत्रालय ने वित्त मंत्रालय से 8,000 करोड़ और मांगने की तैयारी कर ली है।

देश की अर्थव्यवस्था में इस उथल-पुथल को सरकार और उसके पैरोकार यह कहकर सही साबित कर रहे हैं कि अर्थव्यवस्था की धुलाई के लिए दी गई यह कीमत बहुत कम है और बेकार पड़ी मुद्रा बैंकों में आ जाने के बाद आर्थिक तरक्की रफ्तार पकड़ लेगी। लेकिन,जनता की तकलीफों की पहचान सिर्फ उनकी आत्महत्या और विद्रोह से ही नहीं होनी चाहिए। उसे उनके पलायन, क्रयशक्ति, भोजन, स्वास्थ्य और उनके बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के साथ आंका जाना चाहिए। जिस मजदूर को शहर से गांव जाना पड़ा है और जिस कारोबारी को अपना धंधा बंद करना पड़ा है उसकी तकलीफें तर्कों से नहीं संवेदना से ही समझी जा सकती हैं।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 10-01-17

राजनीतिक चंदा सुधार

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने पांच राज्यों के विधानसभा चुनाव से पहले भ्रष्टाचार के खिलाफ कमर कस ली है। पिछले दिनों भारतीय जनता पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी को संबोधित करते हुए उन्होंने राजनीतिक चंदे को पारदर्शी बनाने पर जोर दिया और कहा कि उनकी पार्टी अपने कोष का खुलासा करने में सक्रियता दिखाएगी। उच्च मूल्य वर्ग की नकदी बंद करके बेनामी आय को सामने लाने संबंधी कदम के बाद इस बात को लेकर काफी असहजता देखने को मिली है कि देश के राजनीतिक दलों को खुलासा न करने को लेकर वरीयता प्रदान की जा रही है। प्रधानमंत्री के हालिया कदम का खुले दिल से स्वागत किया जाना चाहिए। वह कह चुके हैं कि चुनावी चंदे में सुधार करना जरूरी हो चुका है और अब राजनीतिक दलों को चाहिए कि वे राजनीतिक फंडिंग में पारदर्शिता का प्रतिरोध न करें। उम्मीद है कि प्रधानमंत्री सर्वदलीय बैठक बुलाएंगे और बजट सत्र के दौरान संबंधित विधेयक पेश करेंगे।

इंटरनैशनल इंस्टीट्यूट फॉर डेमोक्रेसी ऐंड इलेक्टोरल असिस्टेंस (आईडीईए) हैंडबुक के मुताबिक करीब 60 देशों में राजनीतिक दल चंदा देने वालों का खुलासा करने को बाध्य हैं। भारत उनमें शामिल नहीं है। 45 से अधिक देशों में राजनीतिक दलों को गुप्त दान पर रोक है। भारत इस सूची में भी शामिल नहीं है। चूंकि देश में राजनीतिक दलों को मिलने वाले चंदे का अधिकांश हिस्सा अस्पष्टï स्रोतों से आता है इसलिए प्रधानमंत्री द्वारा प्रस्तावित विधेयक में कई क्षेत्रों में सुधार किया जा सकता है ताकि भ्रष्टाचार पर रोक लगाई जा सके। पहला कदम है उन खामियों को रोकना जिनकी बदौलत भ्रष्ट लोग राजनीतिक दलों के कानूनी प्रावधान का दुरुपयोग करके काले धन को सफेद करते हैं। निर्वाचन

आयोग के मुताबिक 1,900 पंजीकृत दलों में से केवल 400 राजनीतिक दल ही हाल के वर्षों में चुनाव लड़े हैं। यह खुला प्रश्न है कि शेष 1,500 दल करते क्या हैं। आयोग ने इन दलों का पंजीयन खत्म करने की अनुमति मांगी है। उसने यह सुझाव भी दिया है कि राजनीतिक दलों द्वारा स्वीकार किए जाने वाले अंकेक्षण रहित चंदे की सीमा को 20,000 रुपये से घटाकर 2,000 रुपये कर दिया जाना चाहिए।

लेकिन 2,000 रुपये की सीमा का भी कोई औचित्य नहीं है क्योंकि उसका भी फायदा उठाया जा सकता है। विधेयक में हर तरह के नकद चंदे को रोकने का प्रावधान होना चाहिए और राजनीतिक दलों के लिए केवल डिजिटल चंदे को ही मान्य कर देना चाहिए। इतना ही नहीं राजनीतिक दलों के अंकेक्षण का काम भी तीसरे पक्ष के अंकेक्षकों से कराया जाना चाहिए। इस विधेयक में सख्त जुर्माने की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि राजनीतिक दल भ्रामक और गलत वित्तीय घोषणाएं नहीं कर सकें। राजनीतिक दलों के लिए भी बढ़िया शुरुआत यह होगी कि वे केंद्रीय सूचना आयोग के नियम का पालन करें और खुद को सूचना के अधिकार के दायरे में लाएं। इससे जुड़ी एक बात यह भी है कि केंद्रीय सतर्कता आयोग, केंद्रीय जांच ब्यूरो और लोकपाल जैसे भ्रष्टाचार विरोधी और निवारण संस्थानों को और अधिक मजबूत बनाया जाए। उनको सही अर्थ में स्वायत्तता प्रदान करने की जरूरत भी है। फिलहाल ऐसी एजेंसियां या तो नेतृत्वहीन हैं या फिर उनको सत्ताधारी दल के राजनीतिक लक्ष्यों की प्राप्ति का जरिया माना जाता है। ताकत के दुरुपयोग का एक मामला तब सामने आया जब सरकार ने राजनीतिक दलों को विदेशी चंदा नियमन अधिनियम 2010 के उल्लंघन के मामले में साफ तौर पर बरी कर दिया। इसके लिए कानून में पुरानी तिथि से बदलाव किया गया। ऐसा करके राजनीतिक दलों के विदेशी चंदे को जायज बनाया गया। आपराधिक छवि वाले राजनेताओं का आना भी दिक्कत की बात बनी हुई है। इससे पता चलता है कि कानून किस कदर सीमित है। प्रधानमंत्री ने राजनीतिक चंदे में साफ-सफाई का इरादा तो दिखाया है। उम्मीद की जानी चाहिए कि अन्य लोग भी उनका अनुसरण करेंगे।

दैनिक जागरण

Date: 10-01-17

सामरिक चुनौतियों का बढ़ता दायरा

कश्मीर के सोपोर में तीन जनवरी को भारतीय सुरक्षा बलों ने पाकिस्तानी आतंकियों के नापाक मंसूबों को नाकाम कर दिया। इसी तरह जब दुनिया नए साल का जश्न मना रही थी तब इस्तांबुल और बगदाद दुखद आत्मघाती बम हमलों से दहल उठा। ये घटनाएं 2017 में भारत और इसके आसपास के देशों के समक्ष आने वाली सुरक्षा चुनौतियों का संकेत दे रही हैं। 2017 में आइएस, अलकायदा और लश्कर-ए-तैयबा आदि संगठनों के जिहादी आतंकवाद के पूरे विश्व में अलग-अलग तरीकों से बढ़ने की संभावना है। हालांकि पाकिस्तान और चीन के विपरीत रुख के कारण इस संबंध में भारत के अनुभव कटु रहे हैं। उल्लेखनीय है कि गत वर्ष 2016 की शुरुआत जनवरी में पठानकोट हमले से हुई थी और समाप्ति नवंबर में नगरोटा हमले के साथ हुई। सेना के कैंपों पर हुए इन हमलों के दौरान हमने स्पष्ट रूप से देखा कि कैसे आतंकी तत्व सेना का सुरक्षा घेरा तोड़ने और जवानों को हताहत करने में सफल रहे थे।

पूर्व उपसेना प्रमुख लेफ्टिनेट जनरल फिलिप कैम्पोस ने सैन्य प्रतिष्ठानों और सीमा की सुरक्षा नीति की समीक्षा की है और यह उम्मीद की जा रही है कि 2017 में इसे तेजी से लागू किया जाएगा, ताकि 2016 जैसी आतंकी घटनाएं दोहराई न जा सकें। लेकिन प्रश्न है कि क्या भारतीय सेना का शीर्ष प्रबंधन इन विशिष्ट और लंबित सुझावों को लागू करने में सक्षम है। पूर्व के अनुभव बताते हैं कि निर्णयों को लागू करने वाली उसकी मौजूदा संरचनाएं ऐसे किसी भी बदलाव की अनुमति नहीं देती हैं, जिससे कि उसकी अक्षमताओं को दूर किया जा सके। मोदी सरकार

केंद्र में अपना आधा कार्यकाल पूरा कर चुकी है। उसने रक्षा प्रबंधन के शीर्ष स्तर पर संरचनात्मक बदलाव को अपने मुख्य एजेंडे में शामिल किया है, लेकिन प्रधानमंत्री और रक्षामंत्री के बार-बार कहने के बावजूद भी इसमें कोई परिवर्तन नहीं आ रहा है।

हमें ध्यान रखना होगा कि भारत की सुरक्षा चुनौतियां सिर्फ आतंकवाद और निम्न तीव्रता के संघर्ष तक ही सीमित नहीं है। इसका दायरा काफी विस्तृत है। भारत के सामने परमाणु हथियारों और मिसाइलों सहित समुद्री, साइबर और अंतरिक्ष हमलों का भी खतरा है। इसके अलावा आंतरिक सुरक्षा के मोर्चे पर भी खासी चुनौतियां मौजूद हैं। यह तथ्य है कि सुरक्षा चुनौतियों से निपटने की क्षमता किसी देश की सेना की क्षमता और संस्थागत संकल्प और एकता पर निर्भर करती है। साथ ही यह उस देश की शासन संरचना और संस्थागत क्षमता से जुड़ी होती है। हालांकि मौजूदा चुनौतियां सुनिश्चित करती हैं कि भारत अपनी सैन्य जरूरतों को स्वयं पूरा करने में सक्षम है, जिसे प्रधानमंत्री मोदी ने मेक इन इंडिया का नाम दिया है।

इसके अलावा 2016 में सामने आए कुछ अन्य तथ्य भारतीय राष्ट्रीय सुरक्षा तंत्र में वर्तमान खामियों को बेहतर ढंग से हमारे सामने रखते हैं। गौरतलब है कि 2016 में आतंकी हमलों के दौरान देश में उग्र विमर्श और प्रतिक्रिया देखी गई, जबकि इसकी कोई जरूरत नहीं थी। हालांकि इसको बढ़ाने में 24 घंटे चलने वाले समाचार चैनलों का भी हाथ था। इसके अलावा रक्षा और गृह मंत्रालय के बीच जिम्मेदारियों को लेकर मतभेद भी खुलकर सामने आए। इसका किसी भी सूरत में समर्थन नहीं किया जा सकता है। भारत पिछले 25 वर्षों से आतंकवाद की चुनौतियों का सामना कर रहा है। दुर्भाग्य की बात है इसके बावजूद भी ये मतभेद बरकरार हैं। इसके अतिरिक्त कुछ आतंकवाद विरोधी ऑपरेशनों में सेना प्रमुख और राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार की भागीदारी की बात समझ में नहीं आई। यह दुखद है कि भारत वर्षों से पाकिस्तान समर्थित छद्म आतंकवाद का सामना कर रहा है और इसने अब तक इसका जवाब देने के लिए कोई संस्थागत ढांचा खड़ा नहीं किया है, जबकि अब तक इसे आकार ले लेना चाहिए था। आंतरिक सुरक्षा के संदर्भ में भारत के सामने एक जटिल चुनौती आतंकवाद रोधी अपनी रणनीति की समीक्षा से भी जुड़ी है। भारत को तय करना होगा कि क्या उसकी रणनीति जरूरत से अधिक रक्षात्मक हो गई और क्या 2016 में सर्जिकल स्ट्राइक के बाद उसकी नीति वास्तव में बदल गई है और क्या यह लाभकारी और टिकाऊ होगा?

भारत की एक राष्ट्रीय चुनौती आयातित रक्षा उपकरणों पर भारतीय सेना की निर्भरता से संबंधित है। नवीनतम आंकड़ों के अनुसार सैन्य हथियारों और उपकरणों के दुनिया के सबसे बड़े आयातकों की सूची में भारत सऊदी अरब के बाद दूसरे स्थान पर है। घरेलू रक्षा और आयुध उत्पादन पर सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों और आयुध फैक्ट्रियों का प्रभुत्व है। इस व्यवस्था को बदलने के लिए पिछले कई दशकों से अनेक प्रस्ताव किए जाते रहे हैं, लेकिन हालात अभी नहीं बदले हैं। यहां तक कि 2014 में सत्ता में आने के बाद से ही प्रधानमंत्री मोदी मेक इन इंडिया को प्राथमिकता देने का आह्वान करते रहे हैं।

यह तथ्य है कि गत एक दशक में सात लाख करोड़ रुपये से अधिक रक्षा संबंधी जरूरतों पर खर्च हुए हैं। इसके साथ ही भारत के पास रक्षा उत्पादन से जुड़े पेशेवरों और विशेषज्ञों की बड़ी टीम है। ये मिलकर भारत में मैन्युफैक्चरिंग और रिसर्च एंड डेवलपमेंट को गति प्रदान कर सकते हैं और इस तरह मेक इन इंडिया को जरूरी साधन मुहैया करा सकते हैं ताकि अधिकांश सैन्य जरूरतें घरेलू उत्पादन से ही पूरी की जा सकें। बहरहाल पिछले दो वर्षों के दौरान रक्षा खरीद प्रक्रिया निराशाजनक रही है। घपले-घोटालों से दबी और अस्पष्टता के आवरण में लिपटे रक्षा सौदों की प्रक्रिया को अभी मोदी सरकार द्वारा अंतिम रूप दिया जाना बाकी है। माना जा रहा है कि इससे सैन्य खरीद प्रक्रिया में पारदर्शिता आएगी, प्रमुख सैन्य आपूर्तिकर्ता देशों और भारतीय संस्थाओं के बीच सामरिक संबंध मजबूत होंगे और मेक इन इंडिया को बढ़ावा मिलेगा। दुर्भाग्य की बात है कि भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा क्षमता में कई गंभीर खामियों और कमियों को जानबूझकर नजरअंदाज किया जाता रहा है। इसमें से कई तो दशकों से मौजूद हैं। इनमें से कुछ को पहचानने और उन्हें अपने एजेंडे में ऊपर रखने के लिए मोदी सरकार की प्रशंसा की जानी चाहिए। लेकिन चिंता की बात यह है कि सुरक्षा चुनौतियां विशाल हैं और सामरिक मोर्चे पर अनिश्चितता के बादल नजर आ रहे हैं।

चीन की दोहरी सोच ने इसे और बढ़ा दिया है। आशंका है कि 20 जनवरी को डोनाल्ड ट्रंप द्वारा अमेरिकी राष्ट्रपति की कुर्सी संभालने के बाद सामरिक मोर्चे पर 2017 में अनिश्चितता और बढ़ जाएगी। माना जा रहा है कि अमेरिका एशिया में अपनी सुरक्षा नीतियां की समीक्षा कर सकता है और उनमें नए सिरे से बदलाव कर सकता है। इसका भारत की सुरक्षा व्यवस्था पर खासा असर होगा। कुल मिलाकर सामरिक चुनौतियों से लेकर सीमापार आतंकवाद के खतरों तक साल 2017 ढेरों दुखद अप्रत्याशित घटनाओं का गवाह बन सकता है। लिहाजा भारत को अपनी खामियों और मजबूरियों को तेजी से दूर करने के लिए संस्थागत निपुणता हासिल करने की जरूरत है। इसके लिए सुरक्षा नीति से जुड़े लोगों को बिना किसी देरी के जुट जाना चाहिए। तभी वे खतरे दूर होंगे जो आंतरिक सुरक्षा के समक्ष उभर आए हैं।

[लेखक सी. उदयभास्कर, इंस्टीट्यूट फॉर डिफेंस स्टडीज एंड एनालिसिस के निदेशक रह चुके हैं]

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date: 09-01-17

More than outrage

Radical public policy reforms are necessary to end crimes against women

Four years after the rape and murder of a young New Delhi resident supposedly transformed our national consciousness, stories of India's grim war against its women continue to be reported with metronomic regularity: The assault on the streets of Bengaluru on the New Year's Eve is only the most recent. It should now be clear that outrage, high-sounding speeches, or even the most perfect laws will not make Indian women safer in the absence of thoroughgoing public policy reforms. The government's data speaks for itself. In 2013, 309,546 cases of crimes against women were reported to police, rising to 337,922 in 2014, then falling to 327,394, suggesting that after an initial surge of hope, women were losing faith in the legal system. The reasons for this aren't hard to find. In 2013, 114,785 rape cases were pending for trial. Of the 18,833 prosecutions that concluded, just 27 per cent ended in a conviction. In 2015, despite new fast-track courts and new laws, 137,458 cases were pending for trial, and convictions had risen only negligibly, to 29 per cent. The bleak truth is that for a woman seeking justice for a gender-related crime, very little has changed.

The path forward is simple, provided the state and central governments have the will to take it. The first step has to be making public spaces — streets, bazaars, public transport — safer. There are many ways to do this, but the backbone has to be law enforcement: The greater deployment of police officers, backed by better training and lighting and surveillance tools. India needs to take a hard look at whether it actually has the capacity to even begin to do this. Just last week, police officers seeking to protect two Delhi women harassed by young men were attacked by a mob. The country now has 144 police officers per 100,000 population, down from 149 per 100,000 in 2013, and well below the UN norm, based on orderly societies, of 220 per 100,000. It also needs more gender-equity: Only 122,912 of India's 1,731,666 state police officers are women.

India can't, however, expect change, unless it's willing to invest in it. Enhanced community policing, for example, needs radical improvements in training and human resource standards; constables hired and paid on scales for unskilled labour cannot be expected to deliver modern policing standards. Forensics and investigation skills are, outside a handful of states, conspicuous by their absence. Finally, deep institutional reforms are needed so police forces become accountable to the communities they are meant to protect, to the law they serve, not governments: Filing a complaint to its processing has to become easier and woman-friendly. Most importantly, any crime against women — and not just rape — has to fetch severe punishment.